REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

# मध्यकालीन मिथिला में कृषिक संस्कृति के आयाम

अनिल प्रसाद सिंह
शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल0ना0मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा.

**सारः**

प्रस्तुत शोधपत्र में पूर्व मध्यकालीन मिथिला लोक संस्कृति के ऐतिहासिक निहितार्थ की पड़ताल की गई है। इसके लिए तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में हो रहे परिवत्तनों को लोक संस्कृति के उदय से जोड़कर देखने की कोशिश की गई। साथ ही सामाजिक जीवन के उन पहलुओं को चिन्हित करने की कोशिश की गई है, जिन्होंने लोक संस्कृति के उन्नयन का सामाजिक आधार प्रस्तुत किया गया है।

**प्रस्तावनाः**

पूर्व मध्यकालीन मिथिला लोक संस्कृति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मिथिला के इतिहास का वह संक्रमण काल है, जब कि 7वीं सदी के दौरान राजनीतिक अराजकता, अनिश्चितता एवं वाह्य आक्रमणों से संत्रस्त मिथिला में असंख्य ग्रामीण एवं स्थानीय सत्ताकेन्द्रों का उदय हुआ। उथल–पुथल के इस दौर में स्थानीय शासकों के रूप में इतिहास में पहली बार शूद्र वर्ण की अनेक जातियों का उन्नयन हुआ, जिसने शूद्र वर्ण के ही अन्तर्गत तथाकथित उच्च एवं निम्न जातियों के बीच अन्तर्विरोध को भी जन्म दिया। यद्यपि शैव एवं बौद्ध तंत्रवाद और ब्राह्मण धर्मशास्त्रकारों ने इस परिवर्तित सामाजिक परिवेश में सामंजस्य एवं संतुलन लाने की चेष्टा के परिणामस्वरूप शूद्रों के इस अभूतपूर्व उन्नयन को आध्यात्मिक एवं बौद्धिक आधार प्राप्त हुआ, परन्तु उनके जातीय अन्तर्विरोधों को पूरे तौर पर समाप्त नहीं किया जा सका। यह उल्लेखनीय है कि राजनीतिक अव्यवस्था के दौरान मिथिला तथा बंगाल में अनेक राजपूत कबीले और जनजातियाँ आकर बसी थीं और उनकी बढ़ती जनसंख्या तथा शक्ति के कारण ब्राह्मण तथा क्षत्रिय शिथिल पड़ते जा रहे थे। साथ ही राजनीतिक विखण्डन के कारण अनेक स्थानीय शासकों के अत्याचार–अनाचार भी बढ़ रहे थे। लोरिकाइन की कथावस्तु 7वीं सदी के मिथिला की इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। मैथिली लोकगाथा लोरिकाइन के नायक यादव जाति के परमशाक्त लोरिक ने गाय, स्त्री, सम्पत्ति, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की निम्न शूद्र जाति के अत्याचारी स्थानीय राजाओं से रक्षा करने के लिए अपनी प्रेयसी तथा अनुचरों के साथ महाभियान किया और अत्याचारियों का अन्त कर शूर धर्म का निर्वाह करते हुए अन्ततः सन्यास पथ पर अग्रसर होकर शिव एवं भैरवी की आराधना म लीन हो गया। इस मूल कथावस्तु को लोरिकाइन में अत्यन्त ही ओजस्वी भाषा में विस्तार किया गया है, जिसमें एक तरफ लोरिक के साथ उसका पिता कुब्बे, भाई, साबर, सहयोगी, राजल, धोबी, कभी दोस्त कभी दुश्मन जैसे बनतमे बिगड़ते रिश्तों वाले बारू दुसाध और बंठा चमार जैसे पात्र हैं, तो दूसरी ओर अधर, हरबा, बरबा तथा मोचनि आदि जैसे दुष्ट पात्र भी हैं, जिन्हें लोरिक अपनी पत्नी मांजरि और प्रेयसी चनैन के सहयोग से समाप्त करता है। लोरिकाइन की गाथा में यदि उच्च एवं निम्न दलित जातियों के बीच संघर्ष का लोकहर्षक वर्णन मिलता है, तो यादवों को राजपूतों के साथ संश्रय भी प्रतिध्वनित होता है। लोरिक गांगेय क्षत्री को दुसाध राजा के

कारागार से मुक्ति दिलाता है, जिसके प्रतिदान में गांगेय क्षत्री लोरिक को करना कुम्हार की प्रताड़ना से बचाता है। लोरिकाइन में शैवद्ध शाक्त एवं तंत्रवाद के पभाव का अनूठा वर्णन मिलता है और इसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रकार के तांत्रिक पात्र हैं। इसके साथ ही कुछ ऐसी जनजातियों के संकेत भी लोरिकाइन में प्राप्त होता है, जिनका चोरी–चकारी करना ही मुख्य व्यवसाय है। इस प्रकार लोरिकाइन पूर्व मध्यकालीन मिथिला के ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण है, जिसकी पूर्ण संगति तत्कालीन इतिहास से है।[1]

आलोच्यकाल के स्वरूप पर विमर्श करने के क्रम में विद्वानों ने कलियुग की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसी उद्देश्य से प्रायः अधिकांश पौराणिक एवं स्मृति ग्रन्थों में चार युगों की परिकल्पना की गई, जिनमें तीन युग अर्थात् कृत, त्रेता एवं द्वापर की अवधारणा जहाँ सैद्धान्तिक है, वहीं कलियुग का वर्णन ठोस ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित है। आधुनिक सिद्धान्तों के बीच कलियुग का काल निर्धारण विवाद का विषय रहा है, पुराणों के गहन अध्ययन के आधार पर आर0सी0 हाजरा ने कलियुग के तीन कालखंडों का निरूपण किया है। हाजरा के अनुसार कलियुग का पहला काल तीसरी और चौथी शताब्दी का पहला चतुर्थास था, जिसका वर्णन वायु, ब्रह्माण्ड और विष्णुपुराण में मिलता है।[2] महाभारत के शान्ति पर्व का युग विवेचन भी इसी अवधि का है। भारतीय इतिहास का यह कालखण्ड सातवाहन एवं कुषाण राजवंश के अन्त और गुप्त साम्राजय के बीच का है, जब राजनीतिक अस्थिरता का व्यापक प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा और वर्णव्यवस्था चरमरा गई थी। कुर्मपुराण और पद्मपुराण के आधार पर[3] आर0सी0 हाजरा ने कलियुग का दूसरा कालखंड 7वीं 8वीं शताब्दी निर्धारित किया है, और मत्स्य पुराण के आधार पर उसने कलियुग का तीसरा दौर 10वीं शताब्दी मे माना है।[4] पर्जिटर[5], पी0वी0काणे और रामशरण शर्मा[6] द्वारा कलियुग के काल निर्धारण संबंधी विचार कमोवेश हाजरा से मिलते हैं। परन्तु बी0एन0एस0 यादव ने पराशर स्मृति और बृहदनारीय पुराण के आधार पर 7वीं 8वीं शताब्दी को कलियुग अर्थात् संक्रमण काल मनाने का सुझाव दिया है।[7] पराशर स्मृति में मनु, गौतम और शंखलिखित द्वारा प्रतिपादित धर्मविधान की अप्रासंगिकता का उल्लेख किए जाने के बाद कलियुग के लिए उपर्युक्त धर्म विधान का प्रावधान किया है।[8] वृहनारदीय पुराण में वर्णित वंशाचार, ग्राम धर्म और कालिवज्य के अनुसार 7वीं 8वीं सदी के दौरान पतनशील प्राचीन युग और आगमनशील मध्ययुग की प्रवृत्तियाँ एवं परिवर्तनों के अनुरूप पराशर स्मृति और वृहनारदीय पुराण के रचनाकारों ने धर्म विधान किया। आर0एस0 शर्मा भी यह स्वीकारते हैं कि 7वीं सदी में प्राचीन युग का पतन और मध्ययुग का पदार्पण हो रहा था।[9] मिथिला के इतिहास के संदर्भ में 7वीं शताब्दी को ही संक्रमणकाल अर्थात् कलियुग मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, जब मिथिला जहाँ तिब्बत, नेपाल, आसाम, बंगाल आदि के आक्रमणों से संत्रस्त हो रहा था, वहीं शैव बौद्ध तंत्रवाद सामाजिक राजनीतिक जीवन में आये भारी बदलावों को सहज एवं स्वीकार्य बनाने में एक सक्रिय भूमिका का निर्वाह कर रहा था।

पुराणों, महाकाव्यों और धर्मशास्त्रों में कलियुग अर्थात् युगान्त या संक्रमण काल की कतिपय विशेषताओं की चर्चा युग धर्म के रूप में समान रूप से प्राप्त होता है, भले ही उनका रचनाकाल जो भी हो। ब्राह्मण शास्त्रीय परम्परा में विदेशी आक्रमण, अराजकता, दलित वर्ण का वर्चस्व, नवीन वर्णसंकर जातियों का प्रादुर्भाव, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णो का ह्रास, परिवार एवं सम्पत्ति की असुरक्षा, चोरी डकैती का विस्तार, सम्पत्ति की महत्ता और म्लेच्छों अर्थात विदेशियों के शासन को कलियुग का युग धर्म कहा गया है। महाभारत के आरण्यक पर्व में यह उल्लेख मिलता है कि कलियंग में शूद्र आरपूर्वक 'आर्य' कहकर सम्बोधित किया जायेगा, सम्पत्ति एवं सत्ता अर्जन करेगा और ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की भाँति आचरण करेगा।[10] यह ऐतिहासिक तथ्य है कि छठी शताब्दी में वैश्यों की कृषक जाति के रूप में पहचान तेजी से समाप्त होने लगी और उनका स्थान शूद्रों ने ग्रहण करना शुरू किया। ह्वेनसांग ने स्पष्टतः दलित को खेतिहर समुदाय के रूप में चिन्हित किया।[11] स्कन्धपुराण में शूद्र का वर्णन अन्नदाता तथा गृहस्थ के रूप में मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में यह सम्बोधन सिर्फ वैश्य गृहपति के लिए ही किया जाता था। एक तरफ यदि इस अवधि में दलित वर्ण के अभूतपूर्व सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक उत्कर्ष का विवरण प्राप्त होता है तो दूसरी ओर सत् एव असत् अथवा उत्तम एवं अत्यंज के रूप में दलित वर्ण में जातीय विभाजन के साथ–साथ अनेक नवीन दलित जातियों के निर्माण का संकेत भी समकालीन पौराणिक ग्रन्थों से प्राप्त होता है। अनेक ऐसी नवीन दलित जातियों को मिश्रित अथवा अन्त्यज की कोटि में रखा गया था, जो पूरे तौर पर ब्राह्मण धर्म में समायोजित नहीं हो पायी थी।

## निष्कर्षः

संक्रमण काल में सत् अथवा सवर्ण शूद्र जातियाँ ब्राह्मण धर्म के रक्षक के रूप में उभरी और ब्राह्मण धर्म की परिधि में लायी गयीं जनजातियों अर्थात् असत् या मिश्रित अथवा तथाकथित अधम जातियों के विरूद्ध उन्होंने हथियार उठाये। इस तरह शूद्र वर्ण के अन्तर्गत अन्तर्जातीय संघर्ष की शुरूआत हुई। वायुप्रदुषण में दलित द्वारा तप करने का उल्लेख बार–बार हुआ है। तो आरण्यक पर्व स्पष्टतः शूद्रों द्वारा ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के आचरणों के अपनाए जाने का वर्णन करता है शास्त्र पुराणों में वर्णित कलियुग युग धर्म 7वीं सदी में मिथिला की स्थिति लोक संस्कृति के उन्नयन का संकेत देता है, जो मूलतः द्विजोरा की संस्कृति होती है।

## संदर्भ सूचीः–


1. द्रष्टव्य, आर0एस0 शर्मा, अर्ली मेडिएवल इंडियन सोसायटी, कोलकाता, 2001
2. आर0सी0 हाजरा, इन द पौराणिक रेकार्ड आन हिन्दू राइटस कलकत्ता, दिल्ली–1975, पृ0 216–17
3. उपर्युक्त, पृ0 177–87
4. उपर्युक्त
5. एस0ई0 पार्टिजर, द पौराणिक टैक्सट्स ऑफ कालिएज, बनारस, 1962, पृ0 115
6. आर0एस0 शर्मा, पूर्वोक्त,पृ0 48
7. द इंडियन हिस्टोरिकल रीव्यू, ए0–5, नं0–1–2, नई दिल्ली, 1979, पृ0–63
8. पराशरस्मृति, 1.24
9. वहनारदीय पुराण, 22.17
10. रामशरण शर्मा, सोशल चेन्जेज इन अर्ली मेडिएवल इण्डिया, दिल्ली, 1962, पृ0 164
11. आरण्यक, पर्व, 186–33, 188–63